International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2016; Page No. 78-79

स्त्री विमर्श

रेनुका कुमारी

पी-एच0डी0, हिन्दी विभाग, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

हमारे भारतीय समाज में आदिकाल से ही पुरूष नारी – शक्ति, स्वरूप देवी की पूजा अर्चना, या देवी सर्वभूतवु के मन्त्रोच्चारयण से करते आ रहे हैं, लेकिन जब से किसी औरत के मान–मर्यादा की बात आती है, तब वे विदक जाते हैं। इस दोहरेपन का श्रेय बहुत हद 'मनस्मृति' और अन्य उस तरह के बहलाने का खिलौना माना गया है। अन्यथा पांचाली दॉव पर नीं लगती, सत्य हरिशचन्द्र अपने दान की दक्षिणा चुकाने अपनी स्त्री, शैव्या को नहीं बेचते, राम द्वारा सीता की अग्नि–परीक्षा नहीं ली जाती। हमारे शास्त्रों में इस तरह की कहानियों या किस्सों से यह साफ जाहिर होता है कि उस समय हमारा समाज मुनवादी थी?

महात्मा बुद्ध को ही लीजिये : वे भी मूल्यों के विरूद्ध, स्त्री के पक्षधर थे, ऐसी बात नहीं थी। अब पाली की स्वीकार, उसी पित्तृसत्तामक मूल्यों के अधीन वेश्यावृत्ति को मान्यता प्रदान करना था। कहते हैं, जब बुद्ध ने संघ की स्थापना की, तो शुरू में औरतों को मर्दो की तरह, दास बनकर आना मना था। उन्होंने अपने संघ में स्त्रियों को जगह नहीं दी, लेकिन अब उनके चचेर भाई आनन्द चाहते थे कि स्त्रियों को भी पुरूषों की तरह संघ में बराबरी की भागीदारी मिले। उन्होंने बुद्ध से इसके लिए तर्क–वितर्क भी किया, पर बात जब नहीं बनी, तो उन्होंने समझाने की कोशिश करते हुए बुद्ध से पूछा, क्या औरतें अगर कोशिश करें तो निर्माण प्राप्त कर सकती हैं? इस पर जवाब में बुद्ध ने कहा; हाँ, क्यों नहीं, प्राप्त कर सकती हैं। तब आनन्द ने बड़ी ही नम्रता से कहा, तो फिर आप उन्हें संघ में आने क्यों नहीं देतें?

सच तो यह है कि स्त्रियों के शुभेक्षु, बुद्धकाल में एकमात्र आनन्द थे जो चाहते थे कि स्त्रियाँ आगे आयें। उनका सोचना था, इसी और पुरूष, दोनों ही बराबर के निर्माण के हकदार हो सकते हैं। जबकि बुद्ध की माता गौतमी, जहाँ–तहाँ बुद्ध जाते थे, वे वहाँ साथ जाती थीं। दुख की बात है कि सम्पूर्ण बुद्ध–साहित्य में कहीं भी आनन्द के सिवा दूसरे किसी व्यक्तित्व का वर्णन नहीं मिलता है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बुद्ध या बौद्ध धर्म स्त्रियों के प्रति उदार था। अंगत्तर में स्त्रियों को अपने कायदे के अनुसार भिक्षुणियों को भिक्षुओं के नीचे दबे रहना था। इस तरह संघ को दो दर्जों में बॉट दिया, साथ ही भिक्षुणियों के लिये दस कड़ी शर्ते रख दी, जिसके पालन करने के पश्चात् ही औरतें संघ में आ सकती थी। जिनमें एक था स्त्री–स्मिता को सबसे अधिक चोट पहुँचाने वाला नियम, भिक्षुणी चाहे जितनी भी बलिष्ठ हो, उसके सामने कोई कमजोर कनिष्ठ भिक्षु आ जाये, तो उसका सम्मान सिर झुकाकर करना होगा और भिक्षुणी को सजा, भिक्षु के वनिस्पत ज्यादा कठोर होगा। इस प्रकार स्त्री पर लादे गये लगभग सभी नियम सख्त थे। बुद्धकाल में केवल बाहर हीं नहीं, संघ के भीतर भी स्त्री को पुरूष के अधीन, उसकी मर्जी के अनुसार जीना होता था।

परवर्ती ब्रहाम्ण साहित्य में भी कहा गया, स्त्रियाँ अपने पति और पुत्र की निगरानी में ही सुरक्षित रह सकती है। ठीक यहीं, बात बौद्ध साहित्य में स्त्रियों की मूल भूमिका, पति की विश्वासी सेविका थी। इस तरह स्त्री जाति की पीड़ा और वेदना कभी कम न थी, आज भी नहीं है। जबकि हम 21वीं शताब्दी में प्रवेश का दावा करते है, यहाँ खाने–पीने उठने–बैठने, हर काम में आधुनिकता झलकती है, फिर भी आज स्त्रियाँ, पुरूषों का उत्पीड़न झेलती है। ऊँची–ऊँची दीवारों के भीतर, घरों में हर चीज के रहते हुए, सन्नाटे के साये में खामोश जीती है। उन्हें बच्चों और पति के फैलाव के अलावा और कुछ सोचने का अधिकार नहीं मिला है। उनकी पीड़ा, आकाश की तरह है, जिसका कोई और छोर नहीं होता। फिर भी अपने पति को खुश रखने के लिए, झूठी मुस्कान को लिहाफ की तरफ ओढ़कर पति के सामने खड़ी रहती है। अपनी भावनात्मक उजाड़पन को, महसूस करने के बावजूद आँखों के आँसू को टपकने नहीं देती, बल्कि उसे पी जाती है। अपने जीवन की लक्ष्यहीन त्रासदी को भलीभांति जानती हुई भी, अपने बेजान कँपकपाती पहचान को बनाये रखने की नाकामयाब कोशिश में लगी रहती है। खुद को टुकड़े–टुकड़े में बँटते देख मन ही मन बिफरती रहती है, लेकिन किसी भी हाल में इसका मुकाबला करने की कोशिश नहीं करती। पंखहीन पक्षी की तरह छटपटा कर रह जाती है। परिवार के सभी सदस्यों को अपनी सेवा से खुशी देने वाली नारी, भीतर कितनी अकेली है, परिवार को कोई सदस्य जानने तक ही जुर्रत नहीं करता।

हमारे समाज की यह सोच, स्त्री–पुरूष के वनिस्पत, दिमागी तौर पर अधिक कमजोर होती, सरासर गलत है। हमारे धर्म शास्त्रों में नारी, सर्वशक्ति सम्पन्न मानी गई है। विद्या, शक्ति, ममता, यश और सम्पत्ति का प्रतीत समझी गई है। वैदिक, युगीन क्षेत्र में नारी का स्थान, पुरूषों के समकक्ष था। उस जमाने में शिक्षित कन्या की प्राप्ति के लिए विशेष अनुष्ठान भी किया जाता था : –

'अथ या इच्छेद दुहिता में पंडिता
जायते सर्वमायुरिया दिति तिलोदन
पाचायित्वा सर्पिष्मन्त श्रीयाता
मीश्वरों जनविच वै (बृहद उपनिषद)'

उस काल में स्त्रियाँ भी पुरूषों की तरह ब्रहामचर्य पालना करती हुई शिक्षा ग्रहण करती थी और विदुषी बनती थी। कुछ स्त्रियाँ तो अपना जीवन विद्याध्ययन में ही करती थी अर्थशास्त्र में स्त्रियाँ निपुण थीं। सभा–गोष्ठियों में ऋग्वेद की ऋचाओं का गान किया करती थी। रामेशा, अपाला, लोपामुद्रा आदि पंडित स्त्रियाँ, इनमें प्रसिद्ध थी। ये सभी पति के साथ समान रूप से धार्मिक, सामाजिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी। द्वापर काल में पाण्डवों की माँ कुन्ती, अर्थवेद में पारंगत थी। कन्या के लिए उपनयन का विधान, मनु ने भी किया था। ऋषि कुशध्वज की कन्या वेदवती, ऐसी ब्रहावादिनी स्त्री थी। काश क्रात्सनी नामक स्त्री ने मीमांसा जैसे क्लिष्ट और गूढ़ विषय पर बहुचर्चित पुस्तक का प्रणयन भी किया था, जो बाद में उसी के नाम पर चर्चित हुई। याग्य वल्वय की पत्नी मैत्रेयी, एक विख्यात दार्शनिका थी।

शायद पुरूषों को यह समझ अभी तक नहीं आई या आई भी तो मानने के लिए तैयार नहीं है, कि जब तक स्त्रियों को समाज में

उचित मान–सम्मान और पुरूषों के बराबर का दर्जा नहीं मिलेगा, स्त्री शिक्षा और आर्थिक उत्थान से दूर रहेगी और जब तक यह नहीं होग, तब तक हमारा समाज पिछड़ा रहेगा। खुशी की बात है कि आजकल पुरूषों के द्वारा भी, कविता, कहानी के जरिये स्त्रियों की दयनीय अवस्था को महसूस करने कवायद शुरू हो चुकी है। जिस दिन स्त्री–पुरूष के बीच की अधिकारिक भिन्नता मिटेगी, बेटियों को भी बेटे की तरह पिता के धन में बराबर का हिस्सा मिलना शुरू होगा। उसी दिन पालकी और अर्थी वाली कहावत खत्म हो जायेगी।

बेटी ससुराल वालों की प्रताड़ना को सहने के लिए मजबूर नहीं होगी। वह वापस अपने घर आ सकेगी। जब तक समाज इसे कबूल नहीं करेगा, बेटियाँ बहू बनकर जलती रहेगी। उनमें कभी आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और आत्म निर्भरता की बात नहीं आयेगी। मेरी समझ में महिला सबलीकरण की मुहिम केवल ससंद में नहीं उसके साथ पीहर में भी होनी चाहिये। जब तक बेटियों को निजी जिन्दगी में पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिलेगा संसद में सबलीकरण के बिल को पास करवाकर कुछ नहीं होगा। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति सामाजिक उत्पीड़न का मुकाबला नहीं कर सकता। धन का अभाव उसे आत्महत्या करने के लिए मजबूर करता है। इसलिए सामाजिक और धार्मिक जीवन, दोनों में ही स्त्रियों की पुरूषों के साथ, समान हिस्सेदारी होनी चाहिए।

अन्यथा, खुद प्रकृति कही जाने वाली नारी,
प्राकृतिक, लौकिक, अलौकिक, सभी सुखों
से दूर जीती रहेगी; उसके जीवन में कभी
कोई प्रकाश नहीं आयेगा।

आत्म निर्भरता की बात नहीं आयेगी। मेरी समझ में महिला सबलीकरण की मुहिम केवल संसद में नहीं उसके साथ पीहर में भी होनी चाहिये। जब तक बेटियों को निजी जिन्दगी में पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिलेगा संसद में सबलीकरण के बिल को पास करवाकर कुछ नहीं होगा। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति सामाजिक उत्पीड़न का मुकाबला नहीं कर सकता। धन का अभाव उसे आत्महत्या करने के लिए मजबूर करता है। इसलिए सामाजिक और धार्मिक जीवन दोनों में ही, स्त्रियों की पुरूषों के साथ, समान हिस्सेदारी होनी चाहिए।

अन्यथा, खुद प्रकृति कही जाने वाली नारी,
प्राकृतिक, लौकिक, अलौकिक, सभी सुखों
से दूर जीती रहेगी; उसके जीवन में कभी
कोई प्रकाश नहीं आयेगा।

सन्दर्भ

1. आधुनिक हिन्दी शब्द कोश–2, पृ0 535
2. चित्रा मुद्गल, देह से नहीं दिमाग से होगी स्त्री मुक्ति, राष्ट्रीय सहारा, 9 जुलाई 2006
3. रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृ0 25–26
4. सूर्यबाला, व्यक्तिगत भेंटवार्ता के आधारपर उद्धत
5. अर्चना वर्मा, स्त्री विमर्श और साहित्य संस्थान पत्रिका, पृ0 –40
6. डा0 प्रभा खेतान, स्त्री : उपेक्षिता, पृ0–58
7. वहीं पृ0 58
8. महादेवी वर्मा, श्रंखला की कड़ियाँ, पृ0–128
9. त्सलीमा नसरीन औरत के हक में, पृ0–99
10. नीलम शंकर, स्त्री मुक्ति –स्त्री का वर्तमान परिदृश्य, अप्रैल 2006, पृ0–27
11. निर्गल। पुतुल पत्रिका से उद्धत।
12. डा0 अहिल्या मिश्र नारीः दश दलन और दायित्व पृ0।
13. अरविंद जैन, औरतः अस्तित्व और अस्मिता, पृ0–26
14. डा0 गीता सोंलकी, नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास–पृ0–30
15. राजेन्द्र यादव, औरत, अस्मिता और यथार्थ, पृ0–30
16. जानकी प्रसाद शर्मा, हम भी मुँह में जुबान रखते हैं – हंस, सितम्बर 1993, पृ0 74
17. सरला माहेश्वरी, नारी प्रश्न, पृ0–46
18. आजकल दिसम्बर 2007, पृ0–36
19. उषा प्रियवंदा शेषयात्रा, पृ0–7
20. नासिरा शर्मा ठीकरे की मंगनी, पृ0115–116
21. डा0 जगदीश चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ0–159
22. चतुरसेन शास्त्री, पत्थर युग के दो बुत, पृ0–78
23. नीलम शंकर, स्त्री मुक्ति–स्त्री की वर्तमान परिदृश्य, अप्रैल 2006 पृ0–27
24. राजेन्द्र यादव, औरत, अस्मिता और यथार्थ, पृ0–30
25. सुरेश बन्ना, नारी अस्मिताः हिन्दी उपन्यासों में, पृ0–1